# पाठ–2
# बिहार और 1857 की जनक्रांति

देश में पहले से तय कार्यक्रम के अनुसार विद्रोह का प्रारम्भ 31 मई को करना था। लेकिन मेरठ में भारतीय सेना अपने जोश एवं जुनून को नियंत्रित नहीं कर पाई। 10 मई को ही उन्होंने अंग्रेज सैनिकों एवं अफसरों की हत्या के साथ युद्ध की शुरूआत कर दी। यह कदम विद्रोह के लिए आगे चलकर आत्मघाती सिद्ध हुआ।

पटना के कमिश्नर टेलर को इस हत्याकांड की खबर लगी। उसे इस बात का अंदाजा हो चला था कि इस युद्ध का स्वरूप देश स्तर का होगा। दानापुर में भारतीय फौज की सुगबुगाहट की भनक भी उसे लग चुकी थी। अतः उसने दो सौ सिख सैनिकों की टोली अंग्रेज अफसर रैट्रे के अधीन में मंगवाई। पटना में ये सैनिक जिधर से गुजरते, लोग देशद्रोही कहकर बुलाते। यहाँ तक कि पटना सिटी के सिख गुरूद्वारे में उन्हें प्रवेश करने से यह कहकर रोक दिया कि तुम देशद्रोही हो और इसलिए गुरूगोविन्द सिंह के सच्चे अनुयायी नहीं हो।

टेलर को पटना के कुछ नेताओं के बारे में सूचना मिली। इसी क्रम में तीन प्रभावशाली मौलवियों के नाम उभर कर आए जो सत्ता के लिए खतरा बन सकते थे। उसने उनकी गिरफ्तारी के लिए चाल चली। पटना के बड़े नागरिकों को बैठक में आमंत्रित किया। बैठक के बाद सुरक्षा का हवाला देकर इन तीनों को गिरफ्तार कर लिया।

टेलर ने युद्ध की आशंका को ध्यान में रखते हुए जनता के हथियार छीन लेने की आज्ञा तो दी ही और 9 बजे रात के बाद बाहर निकलने पर भी पाबंदी लगा दी। इसके बाद क्रांतिकारी उबल पड़े। पीर अली, जो मूलतः लखनऊ के रहने वाले थे किताब की दुकान चलाते थे और दुकान में ही किताबों को पढ़ते–पढ़ते राष्ट्रभक्ति की भावना से भर उठे थे। 2 जुलाई को मुसलमानों की भीड़ उनके घर में प्रवेश कर गई। भीड़ बाहर निकली तो हिंसा पर उतारू हो चुकी थी। पीर अली ने अपनी बंदूक से अंग्रेज अफसर लायल को मौत के घाट उतार दिया। इसी हत्याकांड में उन्हें मौत की सजा दी गई। फाँसी पर चढ़ते समय पीर अली ने अंग्रेज सत्ता को चेताया– ''मैं मर जाऊँ तो मेरे रक्त से हजारों वीर उत्पन्न होकर तुम्हारे राज्य का विनाश कर देंगे।''

पीर अली की फाँसी ने दानापुर के छावनी के सैनिकों में तूफान पैदा कर दिया। भारतीय सैनिकों ने अपने यूनिफार्म फाड़ दिए और सोन नदी की तरफ बढ़ चले। छावनी का अंग्रेज अफसर लोआयल वृद्ध था। इसलिए पीछा करने का साहस न जुटा सका। कुँवर सिंह से सैनिकों की मुलाकात हुई। टेलर को इसकी भनक लगी। उसने फिर चाल चलकर कुँवर सिंह से मुलाकात करना चाहा और इसके लिए उसने कुँवर सिंह को पत्र लिखा– ''आप बहुत वृद्ध हो गए हैं, आपका स्वास्थ्य खराब है, मैं चिंतित हूँ। जीवन के अंतिम दिनों में आप मेरे साथ रहें। आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करें''। कुँवर सिंह टेलर की बात समझ गए और उन्होंने टेलर को पत्र लिखा– ''आपके पत्र के लिए बहुत आभारी हूँ। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है। पटना आने में असमर्थ हूँ। स्वास्थ्य में सुधार होते ही जल्दी मैं पटना आने का प्रयत्न करूँगा''। वीर कुँवर सिंह सिर्फ अदम्य साहसी, योद्धा आदि ही नहीं बल्कि सफल कूटनीतिज्ञ भी थे।

टेलर की क्रूर नीतियाँ असंतोष की ज्वाला को भड़काते जा रहीं थीं। दानापुर के देशभक्त सैनिकों ने कुँवर सिंह से युद्ध को नेतृत्व करने का आग्रह किया। कुँवर सिंह ने आग्रह स्वीकार किया। सबसे पहले इन लोगों ने आरा पर धावा बोला। खजाना लूटकर अंग्रेजी झंडे सहित कई सरकारी प्रतिष्ठान आग के हवाले कर दिए गए। एक छोटे से किले में 25 अंग्रेज और 50 सिख सैनिक छिपे थे। किले के अन्दर ही खाने की सामान पर्याप्त मात्रा में थी और उन्होंने पानी पीने के लिए कुँए खोद डाले थे। क्रांतिकारी सेना ने किले को चारो तरफ से घेर लिया। किले पर आक्रमण न कर क्रांतिकारी सेना अन्य क्षेत्रों में लड़ती रही। इधर किले में सिख सैनिकों ने पच्चीस अंग्रेजी सैनिकों की सुरक्षा की जवाबदेही अपने कंधे पर ले रखी थी। क्रांतिकारी सेना द्वारा चिल्ला–चिल्लाकर सिख सैनिकों से अपने देशवासी भाइयों के समर्थन में हथियार उठाने का आग्रह किया गया, लेकिन सिख सैनिक स्वामी भक्ति पर अड़े रहे और जवाब 'गोलियों' से दिया। कप्तान डनवर ने लगभग 415 सैनिकों के साथ किले में घिरे सैनिकों को आजाद करने के लिए चल दिया। रास्ते में जंगल और झाड़ियों की भरमार थी। अभी कई मीलों की दूरी तय करनी थी। डनवर सिख सैनिकों को आगे कर जंगल पार कर गया। मीलों दूरी तय कर वे आरा के पुल के पास आ गए। कहीं कोई प्रतिरोध नहीं, यह उनके आश्चर्य का कारण था। वह समझ बैठा–अब तो आरा विजय कर ही लिया। शाम होने के बाद चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा था। आगे केवल आम का बगीचा था। अचानक गोलियों की तड़तड़ाहट ने डनवर को संभलने का मौका नहीं दिया। डनवर को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि जवाबी कारवाई किस पर करे। आम के पेड़ों के अलावा

वहाँ कोई नहीं था। कुंवर सिंह की सेना के हमले को झेलना अंग्रेजी फौज के लिए कठिन था। झाड़ियों की ओर से एक गोली चली और डनवर वहीं ढेर हो गया।

अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई। मुश्किल से 415 सैनिकों में से पचास सैनिक ही बचे। इधर मेजर इरे ने अपनी सेना के साथ आरा के लिए प्रस्थान किया। कुँवर सिंह को इसकी भनक लग गई थी। उन्होंने अपने सैनिकों को इकट्ठा किया और रास्ते में ही दुश्मन सेना पर आक्रमण करने की योजना बनाई। बीबीगंज में टक्कर हो ही गई। इरे के पास तीन तोपें थीं जो कुँवर सिंह पर भारी पड़ रही थीं। हालाँकि बहादुर सैनिकों ने तीन बार तोपों को अपने कब्जे में करने का असफल प्रयास किया। कप्तान हेस्टिंग्स के यह कहने पर कि हम हार रहे हैं, इरे ने पूरी ताकत झोंक दी। भाग्य भी इरे के साथ था। घमासान लड़ाई में विद्रोही सेना कमजोर पर गई। इरे ने बाजी पलट दी और बंधक सैनिकों को आजाद करा लिया।

आरा के बाद इरे ने जगदीशपुर की ओर रूख किया। दो बार भीषण संघर्ष भी हुआ। लेकिन इस बार कुँवर सिंह को जगदीशपुर छोड़ना पड़ा। जगदीशपुर भी अँग्रजों के अधीन हो गया। 80 वर्ष की अवस्था में भी दुश्मनों को नाकों चने चबाने पर मजबूर करने वाले महाराज कुँवर सिंह ने छापामार युद्ध का सहारा लिया। लगभग दस महीने तक संघर्ष की ज्वाला को जलाए रखा। इस अवधि में उन्होंने हजारों अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतारा।

**लेखकः— अनुग्रह नारायण सिंह**